B.A. Part: I, History (Sub./Gen.)
Paper: I, Unit: I, Date: Lecture No. 24
21.10.2020

Lesson: ऋग्वैदिक संस्कृति

भारतीय प्रायद्वीप में 1800 से 1500 ई० पू० के मध्य जिस वैदिक आर्य सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ उसे दो कालखण्डों में विभाजित कर अध्ययन किया जाता है। चूँकि उपलब्ध चार वेदों में ऋग्वेद सबसे पुराना है, जिससे आर्यों के जनजातीय घुमन्तू जनों (कबीलों) के स्थायी उपनिवेशन एवं प्रसार के साथ-साथ उनके प्रारम्भिक आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है, अतः इसे ऋग्वैदिक काल कहा जाता है। इसका कालप्रसार 1500 से 1000 ई० पू० माना जाता है। कालान्तर में आर्यों ने कृषि, शिल्प, व्यापार आदि के विकास क्रम जटिल समाज और उसको व्यवस्थित करने के लिए राज्य संस्था की संस्थापना की, तो इस अवधि को उत्तर वैदिक काल कहा जाता है जिस दौरान आर्यों ने लोहे का प्रयोग कर आर्य सभ्यता की संस्थापना की। यहाँ वैदिक सभ्यता के प्रारम्भिक काल अर्थात पूर्व वैदिक काल या ऋग्वैदिक काल के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन का विवेचन अपेक्षित होगा।

(क) आर्थिक जीवन: ऋग्वैदिक आर्यों ने अपने घुमन्तू जीवन का परित्याग कर नदियों के किनारे और पहाड़ों की उपत्यका में उपनिवेश किया, ताकि उन्हें आसानी से जल, आहार और पशुओं के लिए चारागाह उपलब्ध हो सके। ऋग्वैदिक आर्य बाँस-बल्ली और फूस की सहायता से झोपड़ीनुमा घर बनाते थे और अपने घरों को बाँस-बल्लियों से घेरते थे, ताकि उसे जंगली जानवरों से सुरक्षित रखा जा सके। इस घेराबन्दी के अन्दर वे अपने पशुओं को भी रखते थे। ऋग्वैदिक आर्य मूलतः पशुपालक थे और गाय उनका सबसे प्रिय पशु थी, जिससे आधार भी मिलता था तथा परिस्थिति विशेष में इसका विपणन भी होता था। ऋग्वैदिक संस्कृति में गोधन का विशेष महत्व था, जिसके संरक्षण में इस युग के आर्य सदैव तत्पर रहते थे। दूसरा प्रमुख पालतू पशु घोड़ा था, जिसका उपयोग परिवहन एवं युद्ध में होता था तथा इसके मांस और चर्म का भी भरपूर उपयोग होता था। इनके अतिरिक्त भेड़, बकरी, और हिरण इनके पालतू पशु थे। भेड़ से जहाँ ऊन की प्राप्ति होती थी, वहीं बकरी के दूध के अलावे मांस तथा चमड़े का उपयोग किया जाता था। ऋग्वैदिक काल पशुपालन से कृषि की ओर संक्रमण का काल भी माना जाता है। उत्तर हड़प्पा कालीन स्थानीय निवासियों के सम्पर्क और सहयोग से इन्होंने कृषि की शुरुआत की। इसीलिए इसे ताम्र पाषाण कालीन संस्कृति भी माना जाता है। मिट्टी का खोदकर कृषि कर्म के स्थान पर बैलों की सहायता से लकड़ी के हल से खेती की प्रणाली इसी अवधि में विकसित हुई। इस समय प्रमुख रूप से जौ, धान और तिल की खेती होती थी, जिनका खाद्यान्न तथा यज्ञ के हविष के रूप में उपयोग किया जाता था। ऋग्वैदिक काल के अन्त तक आते-आते कृषि क्षेत्र का विस्तार हुआ और पशुपालन के साथ-साथ कृषि कर्म ने भी प्रमुखता हासिल कर ली।

ऋग्वैदिक आर्यों की ज्ञात धातुएँ ताँबा, सोना, चाँदी थी। ताँबे से जहाँ विविध प्रकार के औजार, उपकरण और पात्र बनाए जाते थे, वहीं सोने, चाँदी से आभूषण तैयार किये जाते थे। ऋग्वैदिक काल में तक्षण कला और शिल्प का काफी विकास हुआ। गृह निर्माण एवं घरेलू उपकरणों के निर्माण से लेकर रथ पेटिका निर्माण तक ऋग्वैदिक काल के कर्मकारों (बढ़इयों) ने अपनी उत्कृष्ट तक्षण कला के प्रदर्शन से समाज में काफी सम्मान हासिल किया। ऋग्वैदिक काल में वस्त्र निर्माण कला का भी यथेष्ट विकास हुआ। परन्तु ऋग्वैदिक आर्य स्वयं व्यापार विनिमय नहीं करते थे। इसके लिए वे अनार्य पणियों पर निर्भर थे, जो व्यापार के साथ-साथ बड़ी संख्या में गायों को भी चुरा ले जाते थे। वस्तुतः यह प्रारंभिक ग्रामीण संस्कृति थी और तदनुरूप ही उनका आर्थिक जीवन था।

(ख) सामाजिक जीवन : ऋग्वैदिक आर्यों का सामाजिक जीवन सामुदायिक था और समुदाय को जन कहा जाता था। समाज मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित था। ब्राह्मण जहाँ यज्ञ तथा पूजा अनुष्ठानों एवं बौद्धिक गतिविधियों का संपादन करते थे वहीं क्षत्रिय रक्षक का काम करते थे वैश्य आर्थिक गतिविधियों का संचालन दासों की सहायता से करते थे। वर्ग विभाजन तो हुआ था, किन्तु संस्थागत वर्ण विभाजन नहीं हुआ था, जो ऋग्वैदिक काल के अन्त तक आते-आते संस्थागत रूप धारण करने लगा था। इस समय जन (समुदाय) के अलावे कुल एवं गोत्र पहचान का आधार था। रक्त की शुद्धता के लिए सगोत्रीय विवाह का प्रचलन था। परिवार संयुक्त होते थे और कुल की पाँच से सात पीढ़ियाँ तक एक साथ रहती थीं। युद्ध में पराजित दस्युओं (आर्येतर-जनजातियों) को दास बना लिया जाता था। ऋग्वैदिक काल के अन्त तक आते-आते कुशल दासों को उनके कौशल के अनुरूप जातीय नामकरण के साथ शूद्र वर्ण के अन्तर्गत समायोजित किया जाने लगा। ऋग्वैदिक समाज पितृसत्तात्मक था, फिर भी धार्मिक अनुष्ठानों सम्पादित करनेवाले ब्राह्मणों की बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त था। विधवा स्त्रियाँ अपने परिवार के पुरुषों द्वारा नियोग के माध्यम से पुत्र प्राप्त कर सकती थीं।

ऋग्वैदिक आर्य मांसाहारी थे, परन्तु जौ, तिल और धान से बनी भोजन सामग्रियाँ उनके मुख्य आहार थे। विभिन्न प्रकार के पकवानों का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। दूध, साग-सब्जी और फल भी उनके प्रिय आहार थे।

ऋग्वैदिक आर्य कपास, रेशम और ऊन से बने वस्त्र धारण करते थे। पशुचर्म का प्रयोग भी वस्त्र के रूप में होता था। ऋग्वैदिक आर्य कमर तक ढकने वाले अधो वस्त्र, पूरे शरीर को ढकने के लिए अधिवास और सिर ढकने के लिए पगड़ी का प्रयोग करते थे।

ऋग्वैदिक आर्य आमोद-प्रमोद प्रिय थे। आखेट, मल्ल युद्ध, सुरापान, संगीत, नृत्य आदि उनके मनोरंजन के प्रिय साधन थे। वे जुआ खेलना, तेज-रथ, में भी विश्वास करते थे।

(ग) राजनीतिक जीवन : राज्य संस्था का ऋग्वैदिक काल में पूर्ण विकास नहीं हो पाया था। ऋग्वेद में जो पंचजन्य युद्ध और दशराज्ञ युद्ध की चर्चा है, वह राजाओं का युद्ध है, राज्य का नहीं। किसी प्रशासनिक ढाँचे अथवा कारारोपण एवं राजस्व उगाही की कोई चर्चा ऋग्वेद में नहीं है। दरअसल यह जनाधारित सामुदायिक राज्य था, जिसमें समिति, सभा और विदथ जैसी संस्थाएँ राज्य संबंधी कार्यों को राजन (राजा) के माध्यम से निष्पादित करती थीं। सभा जन के कुल प्रमुखों की संस्था थी, जबकि समिति जन की प्रतिनिधि समिति थी। समिति को जन राज्य के सम्बन्ध में विधायी एवं न्यायिक अधिकार था, जिसमें वह राजा को पदासीन और नए राजा का चुनाव भी करती थी। विदथ जनसभा की संस्था थी जिसमें जन के सदस्यों के बीच खाद्य सामग्रियों का वितरण किया जाता था। राजा की उपाधि जन प्रमुख की थी, परन्तु सभा, समिति और विदथ के निर्णयों से वह बँधा था।

(घ) धार्मिक जीवन : ऋग्वैदिक धर्म समाज की तरह पितृसत्तात्मक और बहुदेवोपासक था। आर्यों ने एक विस्तृत देव मंडल की परिकल्पना की थी और प्रकृति तथा अपने जीवन के विविध पक्षों को अलग-अलग देवताओं के अधीन किया था। युद्ध के देवता इन्द्र थे, तो जल के वरुण और वायु के मरुत, तो अग्नि के पूषन थे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ का आयोजन और वैदिक मंत्रों का गान किया जाता था।

इस प्रकार ऋग्वैदिक संस्कृति ने भारत में आर्य सभ्यता के धरातल का निर्माण किया।

□ डॉ० शंकर जय किशन चौधरी
अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग
डी० बी० कालेज, जयनगर.